Yellow Cover

Green Ink 700

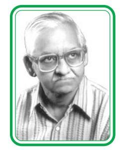

(1936-2009)

ध्यान पत्रिका

संस्थापक : डॉ० शम्भू नाथ

M.Sc., Ph.D.

वर्ष-22 जुलाई-2012 अंक-7

ध्यान शिविर में आप सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

दि० 8, 9 व 10 सितम्बर, 2012 (शनिवार, रविवार, सोमवार)

पंजाबी धर्मशाला (राजगुरु मार्केट), आर्य बाजार, हिसार

फोन : 9416164702, 9416041346

प्रकाशक

ध्यान सत्संग सभा

हिसार (हरियाणा), मो. : 09416164702, 09416041346

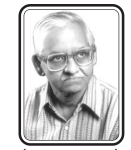

(1936-2009)

ब्रह्म उपासना
(WORSHIP OF GOD)

✍ डॉ० शम्भू नाथ

हर प्राणी के पास तीन चीजें हैं- मन, बुद्धि और शरीर। इनके विकास के रास्तों को साधना कहते हैं और सूक्ष्म साधनाओं को उपासना कहते हैं।

शारीरिक व्यायाम भी एक शारीरिक स्तर की साधना है। जब बच्चे का जन्म होता है: तभी से माँ-बाप और सम्पर्क में आने वाले सभी व्यक्ति उससे इशारों द्वारा बात करके और कुछ बोलने का प्रयास करा करके: उसकी बुद्धि का विकास कराने का प्रयास करते हैं। जब वह बड़ा हो जाता है: तब वह अपनी स्वतन्त्र इच्छा के प्रयोग द्वारा अलग-अलग विषय ज्ञान के विद्यालयों में प्रवेश कर; अपनी बुद्धि का विकास करता है। ये सब बुद्धि के स्तर की साधनाएं हैं। शारीरिक स्तर की साधनाओं द्वारा शरीर का विकास होता है और बुद्धि के स्तर की साधनाओं द्वारा बुद्धि का विकास होता है।

इस तरह से समझना आसान होगा कि बिना मन की साधना में व्यस्त हुए: मन का विकास असम्भव होगा।

आज के समाज में साधारण जन, मात्र अपनी शारीरिक और बौद्धिक साधनाओं के सहारे जीवन को संवारने का प्रयत्न करता है। लेकिन सुख-दुख की अनुभूति करने वाला मन है। मन की साधना का प्रचलन समाज में नहीं है। चाहे जितनी शारीरिक या बौद्धिक स्तर की शक्तियां मनुष्य प्राप्त कर ले:

मन की साधना की कमी में मन दु:ख की ओर अग्रसर होगा और मन की साधना करने से मन सुख की ओर अग्रसर होगा।

ऊपर हम लोगों ने तीन तरह की साधनाओं की बात देखी। शारीरिक साधना, बौद्धिक साधना और मन की साधना। इनमें शरीर सबसे स्थूल है

जो केवल इन्द्रिय जगत की वस्तुओं के सम्पर्क में ही आ सकता है।

मन सूक्ष्म है और इसका निवास स्थान इन्द्रियों से परे जगत में है।

बुद्धि सबसे सूक्ष्म है लेकिन बुद्धि अपने आप में स्वतन्त्र नहीं है। मन का निवास-स्थान इन्द्रियों से परे का जगत है। लेकिन मन के पास पाँच वीडियो लाइन्स (Video Lines) हैं। इन वीडियो लाइन्स को जनसाधारण इन्द्रियों के नाम से जानता है। ये पाँचों इन्द्रियां भी सूक्ष्म हैं लेकिन मन इन्द्रियों के माध्यम से इन्द्रिय जगत के सुख के भोग की शक्ति प्राप्त कर लेता है। इस तरह से यह समझना कितना आसान है कि मन जो सुख का भूखा है; के पास दो जगत सुख भोग करने के लिए हैं। इन्द्रिय-सुख के भोग के लिए मनुष्य को सुख के साधनों की प्राप्ति भी करनी पड़ती है। या यह कहें कि बिना सुख-साधन के इन्द्रिय सुख का भोग असम्भव है।

दूसरा इन्द्रियों से परे के जगत का सुख अर्थात् दिव्य या अलौकिक जगत का सुख।

उपरोक्त दो जगत के सुख के रास्ते अलग-अलग हैं। लौकिक जगत के सुख का रास्ता प्रयास का रास्ता है और

दिव्य जगत का या ब्रह्मसुख की प्राप्ति का रास्ता प्रयासहीनता का रास्ता है। अलग-अलग रास्तों द्वारा इन सुखों की प्राप्ति को साधना कहते हैं।

जब यह साधना प्रयास की मदद से होती है: अर्थात् स्थूल जगत के सुखों की प्राप्ति के लिए होती है, केवल तब इसे साधना कहते हैं।

लेकिन जब प्रयासहीनता के माध्यम से साधना ब्रह्मसुख की प्राप्ति के लिए होती है: तब यह साधना उपासना के नाम से जानी जाती है।

इन्द्रिय जगत में अनन्य प्रकार के सुख हैं, क्योंकि यह किस्मों का जगत है। अलग-अलग तरह के सुख के अलग-अलग रास्ते होते हैं। ये रास्ते

भी दो तरह के हैं। बुद्धि का रास्ता और वेदशास्त्रों द्वारा दिखाए गए कर्मों के माध्यम से इन्द्रिय जगत के अलग-अलग सुखों की प्राप्ति के रासते। बुद्धि के माध्यम से हम लौकिक जगत की शक्तियां प्राप्त करते हैं। उदाहरण के लिए धन की प्राप्ति या अलग-अलग व्यापारों या कलाओं का ज्ञान और इन ज्ञान के आधार पर धन के साथ यश की प्राप्ति के रास्ते। इन रास्तों पर चलने वाले व्यक्ति की सूक्ष्म बुद्धि के विकास का आधार स्थूल जगत में मन का भ्रमण होता है। इस तरह से मन किसी एक सुख की ओर इस आशा से अग्रसर होता है: कि इस रास्ते पर आगे चलकर उसका जीवन बहुत ही सुखदायी हो जाएगा।

लेकिन इन रास्तों की खराबी यह है: कि ऐसे सुखों को ढूंढ़ने वाला मन हमेशा बुद्धि के अधीन रहता है और यह अधीनता जीवन में सुख देने में सक्षम नहीं है।

अत: वह आशा तो सुख की करता है: लेकिन उसे सुख और दु:ख दोनों मिलते हैं। समाज में ऐसे लोग भी पाए जाते हैं, जो एक सुख द्वारा जीवन को सुखी बनाने में असफल होने के कारण इन्द्रिय जगत के अन्य सुखों की ओर अग्रसर होते हैं। लेकिन जैसा ऊपर बताया गया कि ऐसे सभी रास्तों में मन को बुद्धि के अधीन तो रहना ही पड़ता है, अर्थात् सुखभोग करने वाला अधीन रहता है। यही कारण है कि ऐसे व्यक्ति कई जन्म गंवाने के बाद भी अपने जीवन को सुखी नहीं बना पाते।

ब्रह्म जगत: किस्मों का जगत नहीं है, क्रियाओं का जगत नहीं है। इस जगत में मात्र एक शक्ति के माध्यम से सब कुछ मिलता है और इस शक्ति का एहसास मनुष्य अपने जीवन में होने की शक्ति के रूप में करता है। दूसरे शब्दों में ब्रह्म जगत की कोई भी चीज कुछ करके नहीं प्राप्त की जा सकती। इसीलिए इस जगत का सुख अर्थात् ब्रह्मसुख के रास्ते पर

चलने वाले व्यक्तियों में सदा से यह विश्वास रहा है: कि ईश्वर तो मात्र समर्पण से प्राप्त होता है।

ऊपर हमने देखा: कि ब्रह्म जगत क्रियाओं का जगत नहीं है, प्रयास करने का जगत नहीं है। फिर भी आज के समाज में न मालूम कितने व्यक्ति: तरह-तरह के प्रयास के माध्यम से ईश्वर और ईश्वर की शक्ति की प्राप्ति की आशा का दीप अपने मन में जलाकर तरह-तरह की प्रयासपूर्ण साधनाओं में व्यस्त हैं। प्रश्न उठता है कि इस तरह की गलतफहमियों (Ignorance) की उत्पत्ति समाज में कैसे हुई? हमने ऊपर देखा कि

मन के पास भोगने के लिए दो तरह के सुख हैं, इन्द्रिय सुख और इन्द्रियों से परे का सुख।

हमारे शास्त्रों में तीन तरह की साधनाओं का वर्णन मिलता हे: कर्मकाण्ड, उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड।

कर्मकाण्ड में कुछ करके इन्द्रिय जगत की बड़ी-बड़ी शक्तियों की प्राप्ति के रास्ते भी शास्त्रों में मिलते हैं। ये रास्ते समाज में यन्त्र, मन्त्र तन्त्र के नाम से जाने जाते हैं। समाज में इन विषयों पर पुस्तकें भी उपलब्ध हैं, यद्यपि कोई लाखों में एक ही इन रास्तों द्वारा कुछ बड़ी-बड़ी सफलताएं प्राप्त कर पाता है। इन रास्तों को बुद्धि का रास्ता तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन प्रयासपूर्ण रास्ता तो कहा ही जाएगा: क्योंकि इन रासतों पर प्रयास है। आज के जनसाधारण मनुष्य को दिव्य जगत का अनुभव नहीं है, दिव्य जगत की शक्तियों का अनुभव नहीं है, इन शक्तियों से सम्बन्धित मात्र सूचनाएं समाज में उपलब्ध पुस्तकों के माध्यम से उनके पास हैं। ये सूचनाएं किसी और का ज्ञान हैं, जिनके पास सूचनाएं हैं, उनको ज्ञान नहीं है। सत्य यह है कि

ब्रह्म सबसे बड़ी शक्ति है और निर्गुण-निराकार रूप में भावातीत क्षेत्र (Transcessdental Field) में स्थित है। और यह शक्ति पराजगत को जीवन के अनन्त पहलुओं की

शक्ति के रूप में प्रदान करती है।

जिस प्रकार से जंगल में पाए गए हर तरह के पौधों को फल तक पहुंचने की शक्ति जमीन के नीचे है: बिल्कुल इसी प्रकार से इन्द्रिय जगत में पाए गए समस्त प्राणियों के अनन्त पहलुओं का सुख प्रदान करने के लिए अनन्त तरह की शक्तियां पराजगत में हैं।

पराजगत की ये शक्तियां जो कि इन्द्रिय जगत के लौकिक जीवन के अलग-अलग पहलुओं को शक्तियां प्रदान करती हैं: देवता हैं; और इनका स्थान पराजगत में होता है।

जिस प्रकार से इन्द्रिय जगत में सूर्य में अनन्त स्तर की गर्मी और प्रकाश है, चन्द्रमा में ठंडक है, वायु अग्नि के पास अपनी शक्तियां हैं: ये बड़ी-बड़ी शक्यिां इन्द्रिय जगत के देवता कहलाते हैं। लेकिन इन देवताओं की अपनी सीमाएं हैं; और वह यह है कि सूर्य प्रकाश और गर्मी तो दे सकता है, लेकिन जीवन की हर आवश्यक चीज नहीं दे सकता। यह बात वायु, अग्नि, पृथ्वी, गंगा-यमुना नदियां, हिमालय पहाड़, हमारे नक्षत्रगण और तारागण सभी के साथ सत्य है। बिल्कुल इसी प्रकार से

पराजगत में स्थित अनन्त देवता: अपनी-अपनी सीमाओं में बड़ी से बड़ी शक्तियां अपनी साधना करने वाले साधक को प्रदान कर सकती हैं। इन रास्तों को ही पूजा कहा गया है।

आज का जनसाधारण मनुष्य यदि ऐसी पूजाओं को दिव्य जगत की शक्तियों की प्राप्ति का रास्ता समझता है तो इसमें गलत कुछ नहीं है। लेकिन यदि इसे समस्त देवताओं के देव की प्राप्ति का रास्ता समझता है: तो यह बिल्कुल ही गलत है। दूसरी तरह की गलतफहमी (Ignorance) के कारण ही समाज में यह भ्रम फैल गया कि समस्त देवताओं का देव भी प्रयास द्वारा मिलेगा।

गीता को आज के समाज का मनुष्य कर्म प्रधान मानता है; लेकिन उसे कर्म का सही ज्ञान नहीं है। वह केवल प्रयासपूर्ण कर्मों को

ही कर्म समझता है: प्रयासहीन कर्मों को कर्म नहीं मानता। यही कारण है: कि समाज में भ्रम बढ़ता ही गया कि बिना प्रयास के कुछ भी पाना असम्भव है।

कर्म की परिभाषा क्या है?

कर्म मन की गति का सूचक है। प्राणी इस गति को विचारों के माध्यम से अनुभव करता है। मन में विचारों का उठना पल भर के लिए भी बन्द नहीं होता। इसलिए यह समझना आसान होगा: कि कर्म पल भर के लिए भी नहीं रुकता। इन कर्मों से हमारे जीवन का श्वास; दूसरे शबदों में प्राणगति, हमारा रक्त संचार इत्यादि जुड़ा है। इस तरह से यह समझना आसान होगा: कि कर्म गहरे से गहरे आराम की अवस्था में भी हो रहा है और प्रयासपूर्ण क्षणों में भी हो रहा है। गहरा आराम, गहरी निद्रा के समय भी संभव है, स्वप्न के समय भी सम्भव है और जागृत अवस्था में भी सम्भव है। यद्यपि आज के जनसाधारण मनुष्य को यह ज्ञान नहीं है; इसीलिए समाज में यह भ्रम है कि निद्रा के समय स्वप्न आना इस बात का सूचक है कि मनुष्य को गहरा आराम नहीं मिल रहा है। लेखक के पास दस-बारह साल से साधना में रत साधक अच्छी तरह से जानते हैं: कि हम तो मात्र जागृत अवस्था में गहरा से गहरा आराम लेने का अभ्यास कराते हैं। इसलिए वे ज्यादा आसानी से समझ सकते हैं कि जब जागृत अवस्था में गहरे से गहरे आराम की सम्भावना है: तब स्वप्न के समय क्यों नहीं है? दूसरे शब्दों में हम यह कहना चाहेंगे: कि बहुत गहरा आराम प्राप्त करने के लिए गहरी निद्रा अनिवार्य नहीं है। हर कर्म के लिए शक्ति चाहिए।

गहरे आराम के समय कर्म किया नहीं जा रहा है: कर्म हो रहा है। अर्थात् कर्म होने की शक्ति के माध्यम से हो रहा है। हम यह भी महसूस करते हैं कि जब कर्म होने की शक्ति के माध्यम से हो रहा है: तब 'मैं' नहीं है अर्थात् करने वाला 'मैं' नहीं है।

फिर कर्म करने वाला कौन है?

ऐसी अवस्था में कर्म ब्रह्म की शक्ति द्वारा होता है। दूसरे शब्दों में: वह जो सब कुछ देने वाला है; वह स्वयं हमारे अन्दर कर्म कर रहा है। अब यह समझना बहुत आसान होगा कि

अनन्त ब्रह्माण्डों के समस्त प्राणियों में प्रयासहीनता के समय कर्म करने वाला: होने की शक्ति; अर्थात् स्वयं ब्रह्म है।

और यदि कृष्ण द्वापर में ब्रह्म के अवतार हैं: तब गीता में अर्जुन से वे यही बताएंगे कि कर्म करने से स्वयं का 'मैं' पल भर के लिए भी मुक्त नहीं था। यही ज्ञान उन्होंने गीता में अर्जुन को दिया। इस तरह से गीता के इस श्लोक की सत्यता को साधक अनुभव कर सकते हैं: कि स्वयं कृष्ण किसी भी युग में कभी भी कर्म से मुक्त नहीं थे।

गीता में दो तरह के कर्मों का वर्णन आता है: निष्काम और सकाम। इन कर्मों के विषय में भी तरह-तरह की व्याख्याएं समाज में बतायी जाती हैं। लेकिन लेखक यहाँ पर कहना चाहेगा कि

मात्र होने की शक्ति द्वारा अर्थात् वह कर्म जिसमें स्वयं ब्रह्म शामिल है, निष्काम कर्म है।

जिस समय बुद्धि कार्यरत है: उस समय प्रयासपूर्ण कर्म है। ऐसे कर्मों को करने वाला 'मैं' हर क्रिया के साथ जुड़ा हुआ है। ऐसे कर्म ही सकाम कर्म हैं। किस अनुपात में वह सकाम और निष्काम कर्मों में व्यस्त है: मात्र उसी अनुपात में उसे साधना फल की आशा करनी चाहिए।

निष्काम कर्मों का समय जगृत अवस्था में धीरे-धीरे बढ़ना ही: आत्मोत्थान का सूचक है।

और सकाम कर्मों का समय धीरे-धीरे जीवन में बढ़ना ही आत्म पतन का सूचक है। इसी तरह से हमारे आत्मोत्थान और पतन की अवस्था हर पल बदलती है और इन अवस्थाओं के आधार पर हमें जीवन के सुख-दु:ख भोगने पड़ते हैं।

अब प्रश्न यह उठता है: कि किस थर्मामीटर द्वारा हम अपनी अवस्था को देखें?

निष्काम कर्म में व्यस्त रहने वाले व्यक्ति में धीरे-धीरे एक ऐसा सुख जागृत होता है: जिसकी अनुभूति के लिए मन इन्द्रियों की मदद नहीं लेता।

मन का गुण है: कि वह सुख में लीन हो जाय: चाहे वह इन्द्रिय सुख हो, चाहे ब्रह्म सुख हो। इन्द्रिय सुख बिना सुख-साधन के प्राप्त नहीं होता। इसलिए ऐसे सुख में लीन व्यक्ति में सुख का साधन समाप्त होने का डर धीरे-धीरे बैठने लगता है। या किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा उनके साधन के छिन जाने का डर आ जाता है। यदि उसे ईमानदारी से यह साधन नहीं मिलते दिखाई देते: तो वह बेईमानी का रास्ता पकड़ता है; और इस रास्ते पर प्रयासपूर्ण कर्म बढ़ते हैं। दूसरे शब्दों में सकाम कर्म बढ़ते हैं और ऐसा होने से निष्काम कर्मों में कमी आती है। धीरे-धीरे हम आत्मोत्थान से आत्मपतन की ओर भी मुड़ सकते हैं। लेकिन कुछ साधक ऐसे होते हैं जो दु:ख की अवस्था में सकाम कर्मों में न जाकर: प्रभु की प्रार्थना के साथ निष्काम कर्मों में रत हो जाते हैं। ऐसे व्यक्तियों के जीवन आत्मोत्थान की ओर ही मुड़ते हैं और धीरे-धीरे ब्रह्मसुख की जागृति तीव्र गति से होने लगती है। एक समय आता है: जब ब्रह्मसुख इन्द्रियसुख पर हावी होने लगता है। दूसरे शब्दों में वह इन्द्रियसुख को छोड़ कर और तीव्र गति से ब्रह्मसुख की उत्पत्ति हेतु साधना में रत होने लगता है।

धीरे-धीरे समय आता है: जब ब्रह्मसुख मन को सोते-जागते हर समय इन्द्रिय जगत में कार्यरत होते हुए भी, अपने में लीन रखता है। या यह कहें कि मन को भविष्य के प्रयत्नों या भूत की यादों की ओर नहीं जाने देता।

इस अवस्था को ही समाधि की अवस्था कहते हैं। धीरे-धीरे यह समाधि हर समय मन पर हावी होने लगती है। यह समझना बहुत आसान है: कि

ऐसे व्यक्तियों के लिए प्रयासपूर्ण कर्म कितने कठिन होंगे? इसलिए केवल ऐसे व्यक्तियों के लिए कृष्ण ने गीता के अध्याय 9 श्लोक 22 में कहा है :-

जो जन मुझे भजते, सदैव अनन्य-भावापन्न हो।
उनका स्वयं मैं ही चलाता योग क्षेम, प्रसन्न हो॥

जो लोग अनन्य भाव से मेरे दिव्यस्वरूप का ध्यान (Self Realization) करते हुए निरन्तर मेरी पूजा करते हैं: उन की जो आवश्यकताएं होती हैं; उन्हें मैं पूरा करता हूं और जो कुछ उनके पास है, उसकी रक्षा करता हूं। **ऐसे व्यक्तियों का योग क्षेम तो स्वयं मैं करूंगा। दूसरे शब्दों में होने की शक्ति करेगी। अब साधक के लिए कितना आसान है: कि वह अपने जीवन में हर समय नित्य होने की शक्ति के रूप में कृष्ण की उपस्थिति को अनुभव कर सके। ज्यों-ज्यों यह अनुभव तीव्र होता चला जाता है: वह कुछ भी खो सकता है। लेकिन यदि खोने के बाद ही उसे वापस पाने की इच्छा जागृत होती है: तो होने की शक्ति, कोई न कोई परिस्थिति पैदा करेगी जिससे कि मनुष्य को लगे कि जितना भी खोया; शायद उससे ज्यादा मिल गया। ऐसी अवस्था ही मनुष्य की इच्छा: निवृत्ति का कारण बनती है और यही कृष्ण द्वारा योगक्षेम है और यही ब्रह्म उपासना है।** ❑

``अभ्यास आवश्यक''

✍ श्रीमती उषा गर्ग (08901265520)

याद रखो संसार में कोई भी चीज मुफ्त में नहीं मिलती। उसका कुछ न कुछ मूल्य अदा करना पड़ता है। चाहे वह धन के रूप में हो, या समय के रूप में। परन्तु मूर्ख आदमी सोचता है: कि वह मुफ्त में हासिल कर लेगा। परन्तु यह उसकी भूल है। अगर आदमी अपने दुखों को दूर करना

चाहता है। अर्थात् इस दुनिया में आकर अपना आना सफल बनाना चाहता है और परमात्मा को पाना चाहता है: तो उसे सिर्फ कुछ समय देना पड़ेगा, ताकि उस समय वह एकांत में बैठकर भगवान को याद कर सके: वह भी आराम का आराम और प्रभु का ध्यान। इस अभ्यास से उसे सब कुछ दुनियां का मिलना आरम्भ हो जाएगा और जो विकार भी होंगे: वे भी अपने आप दूर होने लगेंगे।

मनुष्य आता है इस दुनियां में अपने पूर्व कर्मों को काटकर, भगवान का ध्यान करके अपने जीवन को सफल बनाने के लिए; परन्तु मोह माया में उलझ कर कर्म काटने की जगह और बना लेता है: जिसका हिसाब चुकाने के लिए अगला जन्म फिर तैयार हो जाता है। अक्सर देखा है: कि आदमी धर्म की बड़ी-बड़ी बातें कर लेता है, सुन भी लेता है और इस सब में उसको मजा भी आता है। परन्तु अभ्यास के बिना सच्चाई का ज्ञान नहीं होता।

दुनिया में आने के बाद आदमी सब करता है: सुख पाने के लिए। पर वह नहीं करता: जिससे सुख, आनन्द, कल्याण पा ले।

जैसे एक कहानी सुनी मैंने: कि एक बार एक पढ़ा लिखा व्यक्ति नाव पर सवार होके जा रहा था। उसी के साथ एक और सवार बैठा था जो पढ़ा लिखा नहीं था। पढ़ा-लिखा आदमी उससे ऊंची-ऊंची बातें कर रहा था। कभी कहता कि Geology (भूगर्भ शास्त्र) पढ़ा? अनपढ़ कहता है: मेरे लिए तो काला अक्षर भैंस बराबर है। तो पढ़ा व्यक्ति कहता है: तूने एक चौथाई जिंदगी बर्बाद कर दी। दूसरी बार पढ़ा-लिखा आदमी उसको कहता Oceanology (समुद्र शास्त्र) पढ़ा? वह तब भी न कहता: तो उसे कहता तूने आधी जिंदगी खराब कर दी। तीसरी बार कहता: तूने Materiology (ऋतु शास्त्र) पढ़ा? उसने फिर न कही: तो कहता तूने तीन चौथाई जिंदगी चौपट कर दी। जिस धरती पर रहता है: उसका शास्त्र

नहीं पढ़ा। जिस हवा पानी के मौसम से तेरा रोज वास्ता पड़ता है: उसका शास्त्र नहीं पढ़ा। बड़ा अभागा है तू। अनपढ़ उदास हो गया। परन्तु उसी समय अनपढ़ ने पानी में कुछ देखा और उस सज्जन से कहा: कि आपने Swimology (तैराकी शास्त्र) पढ़ा? वह कहता नहीं। वह क्या होता है? अनपढ़ व्यक्ति कहता: कि तैरना जानते हो? उसने कहा नहीं। तो आपने सारी जिन्दगी चौपट कर दी: क्यों कि कुछ समय में नाव डूब जाएगी। जो तैरना जानते हैं: वे किनारे पर पहुंच जाएंगे। जो नहीं जानते: वे डूब जाएंगे।

कहने का तात्पर्य यह है कि दुनियां भर की पढ़ाई या और काम: किस काम के? जब भवसागर पार करने की विद्या नहीं सीखी। भवसागर को पार करना है और अपना जीवन सफल बनाना है: तो डुबकी लगाएं और भीतर में जो मोती सीप है, उसे प्राप्त करें और मुक्त हो जाएं। आपका तो कल्याण होगा ही, आपके साथ या आसपास; वे भी तर जाएंगे। यह सब करके आप किसी पर ऐहसान नहीं करेंगे: बल्कि जो अमूल्य मानव तन मिला है, उसको सफल बनाएंगे। वक्त हाथ से निकल रहा है: इसीलिए जो गया, उसको न देखो। जो आपके सामने है: अभी उठो और ध्यान की विधी जो बहुत आसान: बस आंख बन्द करके आराम ही करना है। एक बार भगवान् का कोई नाम: लेकर। दिन में तीन बार: 30-30 मिनट बैंठें। संसार में आना सफल हो जाएगा। ❑

संकट निवारण

✍ **श्री रवि प्रकाश कौशिक (09417297254)**

दुनियां में प्रत्येक व्यक्ति हर समस्या का समाधान अपनी बुद्धि से करना चाहता है। उसे अपनी बुद्धि पर बहुत अधिक भरोसा है। संसार में एक दूसरे से बढ़कर ज्ञानवान व अनुभवी व्यक्ति उपस्थित हैं। यदि उनके

अनुभव को समझकर, उन द्वारा बताए नियमों का अनुसरन करें तो जीवन से दु:ख भगाया जा सकता है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति को अपनी अल्प बुद्धि पर अत्याधिक अभिमान है कि वह किसी विशेष अनुभवी की बात को समझते हुए भी, अपनाने को तैयार नहीं है।

यदि आप जीवन से दु:ख भगाना व सुखी जीवन जीना चाहते हैं: तो अधिक से अधिक समय उन व्यक्तियों के सम्पर्क में रहें, जिन्हें आप सुखी समझते हैं। किसी को भी मित्र बनाने से पहले परख लें कि वास्तव में वह सुखी है? परख करने पर पता चलेगा कि केवल ईश्वर ही सगुण, सत्-चित्, आनन्द का भण्डार एवं निराकार शक्ति है। केवल वही इस ब्रह्माण्ड में सुखी है। ईश्वर हमेशा है। उसमें चेतनता है और वह आनन्द का स्त्रोत है। इसलिए केवल वही सम्पर्क स्थापित करने योग्य है। ईश्वर से सम्पर्क स्थापित करने का रास्ता केवल ध्यान है। जिसकी शुरूआत माला, जाप, स्तुति, ज्ञान, नाच, प्राणायाम या किसी अन्य तरीके से की जा सकती है। इन अन्य सहायक क्रियाओं को जल्द ही छोड़कर आप ध्यान (होने) की अवस्था तक पहुंच जाते हैं।

जब आपको ज्ञात होता है कि मेरा जाप, माला, ज्ञान या स्तुति छूट गई: तो समझिये, जब यह छुटा था: उस समय से लेकर जब आपको छूटने का आभास हुआ: तब तक के बीच का समय आपका ध्यान लग गया था। इतना समय आप ईश्वर के सम्पर्क में थे। धीरे-धीरे नित्य ऐसे अभ्यास से ईश्वर की शक्ति आपके जीवन में प्रकट होने लगेगी: जिसमें सभी प्रकार के संकट व दु:ख-दर्द दूर करने की क्षमता है। अब यह परिभाषा सिद्ध होगी: कि ''जहां प्रभु का नाम होता है, वहां दु:ख का लेशमात्र भी नहीं रहता।''

अत: आप सभी से अनुरोध है कि आप 30-30 मिनट: दिन में तीन बार सुबह, दोपहर, सायं प्रतिदिन ध्यान अवश्य करें और दयालू ईश्वर की संकट निवारण शक्ति का प्राक्टय अपने जीवन में अनुभव करें।

क्या है योग ?

✍ श्री अशोक वाजपेयी

जिस काल में चित्त की वृत्तियां शांत होकर आत्मा में विश्राम पाती हैं: उसे योग कहा जाता है। अष्टावक्र गीता (1.4) के अनुसार अष्टावक्र जी राजा जनक को समझाते हैं :-

यदि देह पृथक्कृत्य चिति विश्राम्य तिष्ठसि।
अधुनैव सुखी शान्तः अन्धुमुक्तो भविष्यति॥

''यदि तुम शरीर को पृथक कर के तथा चैतन्य आत्मा में विश्राम पूर्वक स्थित हो: तो तुम अभी ही सुखी, शान्त तथा बन्धन-मुक्त हो जाओगे।''

विभिनन दिशाओं में दौड़ने वाला मन अपने स्वरूप में जब सथापित हो जाता है: तो उसे योग कहते हैं। योग का शाब्दिक अर्थ है जोड़: अर्थात् दो वस्तुओं का एक में मिल जाना, एकाकार हो जाना। अब प्रश्न है; कि

किस वस्तु का किससे जुड़ने को अध्यात्म में योग कहा गया है?

इसे गहनता से समझने की आवश्यकता है। आजकल शारीरिक क्रियाओं व शरीर को स्वस्थ रखे जाने को योग नाम से परिभाषित किया जाता है। हां, शरीर को स्वस्थ रखना तो आवश्यक है। शरीर का तो अत्यंत महत्व है।

इस शरीर से ही सारा कुछ साधा जाना संभव हो पाता है। परंतु शरीर को पुष्ट करना मात्र योग नहीं है। नौ द्वारों वाले मानव शरीर में पांच ज्ञानेन्द्रियां, पांच कर्मेन्द्रियां, पांच तत्व व पांच विषय, मन-बुद्धि, चित्त-अहंकार। चौबीस तत्वों वाली इस प्रकृति में मनुष्य सदैव से ही उलझा रहा है।

मनुष्य को यह भान भी नहीं हो पाता कि वह भौतिकता में उलझा हुआ है।

वह इस जगत के प्रपंच में फंस गया है। इस भ्रमजाल को तोड़कर मन को अपने मूल तत्व के साथ जोड़ दिया जाता है: तो इसे योग कहते हैं।

अपने निज स्वरूप को जानकर परमात्मतत्व से एकाकार हो जाए, यही योग का सच्चा अर्थ है।

योग साधना को प्राप्त हुए साधक के लिए कुछ भी असंभव नहीं रहता। उसका शरीर तो स्वमेव पुष्ट होता रहता है। आवेग और संवेग पर जब नियंत्रण हो जाएगा: तो शरीर की सूक्ष्म ऊर्जा का क्षरण नहीं होगा; और शरीर स्वत: ही पुष्ट होता रहेगा।

इस योग की सिद्धि से मानव जीवन प्राप्त करने का उद्देश्य पूरा हो जाता है तथा शरीर को स्वस्थ रखने की चिंता से भी मुक्ति मिल जाती है।

अत: मनुष्य को योग साधना के माध्यम से जीवभाव से उबरकर आत्मभाव में स्थापित होकर: परमात्मा का साक्षात्कार प्राप्त करके: उसके परमानन्द तत्व में प्रविष्टि पाकर सदा-सदा के लिए स्थापित हो जाने के लिए प्रयत्नशील हो जाना चाहिए। ❑

चुप साधन

✍ स्वामी रामसुखदास

बाहर-भीतर से चुप हो जाना: 'चुप-साधन' है। साधना का बढ़िया समय है- प्रात: नींद से उठने के बाद। जैसे गाढ़ नींद में किंचिन्मात्र भी कुछ करने का संकल्प नहीं था: ऐसे ही जाग्रत्-अवस्था में किंचिन्मात्र भी कुछ करने का संकल्प न रहे। चिन्तन, जप, ध्यान आदि कुछ भी नहीं करना है। 'चिन्तन आदि नहीं करना है'-यह संकल्प भी नहीं रखना है।

'न करने' का संकल्प रखना भी 'करना' है। वास्तव में 'न करना' स्वत: सिद्ध है।

अब किंचिन्मात्र भी कुछ नहीं करना है-ऐसा विचार करके चुप हो जाएँ। 'सब जगह एक परमात्मा परिपूर्ण हैं'-ऐसा मानकर चुप हो जाएँ। कोई बात याद आये तो उसकी उपेक्षा करें: विरोध न करें। उसमें न राजी हों, न नाराज हों; न राग करें, न द्वेष करें। संकल्पों के साथ न चिपकें: अर्थात् उनको अपना न मानें।

आप कहते हैं कि मन बड़ा खराब है: पर वास्तव में मन अच्छा और खराब होता ही नहीं। स्वयं अच्छा है तो संकल्प अच्छे हैं; और स्वयं खराब है तो संकल्प खराब हैं। प्रकृति के सम्बन्ध के बिना: न अच्छा होता है और न बुरा होता है। जैसे सुख और दु:ख दो चीज हैं: पर आनन्द में दो चीज नहीं हैं; अर्थात् आनन्द में न सुख है, न दु:ख है ।ऐसे ही प्रकृति के सम्बन्ध से रहित तत्व में: न अच्छा है, न बुरा है। इसलिये अच्छे और बुरे का भेद करके: राजी और नाराज न हों। भूतकाल में हमने जो काम किये हैं: उनकी याद आती है; अथवा भविष्य में कुछ करने का विचार पकड़ रखा है: उसकी याद आती है (कि वहां जाना है, वह काम करना है आदि।) इस तरह भूत और भविष्य की याद आती है: जो अभी है ही नहीं। वास्तव में उसकी याद आ नहीं रही है: प्रत्युत स्वत: जा रही है। मन में जो बातें जमा हैं: वे निकल रहीं हैं। अत: आप उससे सम्बन्ध मत जोड़ें; तटस्थ हो जाएं। संकल्प भी अपने-आप नश्ट हो जाएंगे: क्योंकि उत्पन्न होने वाली वस्तु स्वत: नष्ट होती है-यह नियम है।

संसार में बहुत से पुण्यकर्म होते हैं: पर क्या हमें उनसे पुण्य होता है? ऐसे ही संसार में बहुत से पापकर्म होते हैं: पर क्या हमें उनका पाप लगता है? नहीं लगता। क्यों नहीं लगता? कि हमारा उनसे सम्बन्ध नहीं है। उनके साथ हमारा सहयोग नहीं है। जैसे संसार में पुण्य-पाप हो रहे हैं: ऐसे ही मनमें संकल्प-विकल्प हो रहे हैं। हम उनको करते नहीं; और करना

चाहते भी नहीं। हम उनके साथ चिपक जाते हैं: तो उनकी पुण्य और पाप की, अच्छे और बुरे की संज्ञा हो जाती है; जिससे उनका फल पैदा हो जाता है और वह फल हमें भोगना पड़ता है। इसलिये उनके साथ मिलें नहीं। न अनुमोदन करें, न विरोध करें। संकल्प-विकल्प उठते हैं: तो उठते रहें। यह करना है और यह नहीं करना है- इन दोनों को उठा दें। गीता में आया है-

नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्च्न।

करने और न करने-दोनों का ही आग्रह न रखें। करने का आग्रह रखना भी संकल्प है; और न करने का आग्रह रखना भी संकल्प है। करना भी कर्म है; और न करना भी कर्म है। करने में भी परिश्रम है; और न करने में भी परिश्रम है। अत: करने और न करने- दोनों से किंचिन्मात्र भी कोई मतलब न रखकर: चुप हो जाएं। तो प्रकृति का सम्बन्ध छूट जाता है और स्वत: परम विश्राम प्राप्त हो जाता है; क्योंकि क्रियारूप से प्रकृति ही है। वह क्रिया चाहे शरीर की हो, चाहे मन की हो: सब प्रकृति की ही है। इस प्रकार बाहर-भीतर से चुप हो जाएं; तो जिसको तत्वज्ञान कहते हैं, जीवनमुक्ति कहते हैं, सहज समाधि कहते हैं: वह स्वत: हो जाएगी।

उत्तमा सहजावस्था मध्यमा ध्यानधरणा।
कनिष्ठा शास्त्र चिन्ता च तीर्थयात्राऽधमाऽधमा॥

छोटे-से-छोटा साधन तीर्थयात्रा है। उससे ऊँचा शास्त्रचिन्तन है। शास्त्र चिन्तन से ऊँची ध्यान-धारणा है; और ऊँची से ऊँची सहजावस्था (सहज समाधि) है: उस सहजावस्था में आप पहुंच जाएंगे।

सहजावस्था न जाग्रत है, न स्वप्न है, न सुषुपित है, न मूर्च्छा है और न समाधि है। सुषुपित और सहजावस्था में फर्क यही है: कि सुषुपित में तो बेहोशी रहती है, पर सहजावस्था में बेहोशी नहीं रहती; प्रत्युत होश रहता है, जागृति रहती है, ज्ञान की एक दीप्ति रहती है-

आत्मसंयमयोगाग्नौ जुहृति ज्ञानदीपिते॥ (गीता 4.27)

वास्तव में चुप होना नहीं है: प्रत्युत चुप तो स्वाभाविक है। जिनके वेदान्त संस्कार हैं; वे समझ जाएंगे: कि आत्मा न कर्ता है, न भोक्ता है। अत: सहजावस्था स्वाभाविक है। अगर आधा मिनट चुप हो जाओ: तो बड़ी शक्ति पैदा होती है। चुप रहने में जो शक्ति पैदा होती है, वह शक्ति करने में कभी पैदा नहीं होती: प्रत्युत करने में तो शक्ति खर्च होती है। हम काम करते-करते थक जाते हैं: तो फिर सो जाते हैं। गहरी नींद में सब थकावट दूर हो जाती है और मन में, इन्द्रियों में, शरीर में ताजगी आ जाती है: करने की शक्ति आ जाती है। न करना ही परमात्मा का स्वरूप है: जो नित्य प्राप्त है-

दौड़ सके तो दौड़ ले, जब लगि तेरी दौड़।
दौड़ थक्या धोखा मिट्या, वस्तु ठौड़-की-ठौड़॥

न करने का जो माहात्म्य है: वह करने का है ही नहीं, कभी हुआ ही नहीं, कभी होगा भी नहीं और हो सकता ही नहीं। न करने में जो सामथर्य है: वह करने में है ही नहीं। कारण कि करने का आरम्भ और अन्त होता है; अत: करना अनित्य है। परन्तु न करने का आरम्भ और अन्त नंही होता; अत: न करना नित्य है। सींथल (राजसथान) में श्री हरिराम दास की वाणी में आता है :-

सहजां मारग सहज का, सहज किया विश्राम।
'हरिया' जीव र सीव का, एक नाम अरु ठाम॥
सहज तन मन, सहज पूजा।
सहज सा देव, नहीं और दूजा॥

उन्होंने अपना परिचय भी इस प्रकार दिया-

हरिया जैमलदास गुरु, राम निरंजन देव।
काया देवल देहरो, सहज हमारे सेव॥

'श्री जैमलदास जी महाराज हमारे गुरु हैं। जो प्रकृति से अत्यन्त अतीत हैं, वे राम हमारे देव हैं। यह शरीर हमारा देवल (देवस्थान) है। सहज (कुछ

न करना) ही हमारी सेवा है।

ऐसी सहजावस्था की प्राप्ति का उपाय है- बाहर भीतर से चुप हो जाना अर्थात् कुछ न करना। कुछ न करने से सब कुछ हो जाता है। हमें करना कुछ है ही नहीं-न पहले करना था, न अभी करना है, न बाद में करना है। भगवान् का भी चिन्तन नहीं करना है। न संसार का चिन्तन करना है, न भगवान् का। मन का निरीक्षण भी नहीं करना है। मन का निरीक्षण तभी करेंगे: जब मन के साथ अपना सम्बन्ध मानेंगे, जबकि मनके साथ हमारा सम्बन्ध है ही नहीं। अत: मन की तरफ देखना ही नहीं है। यह कोई मामूली चीज नहीं है: बहुत ऊँची चीज है। यह सब साधनों का अन्तिम साधन है। कुछ न करने में: सब साधन एक हो जाते हैं। जैसे अरबों रुपयों का एक पैसा भी अंश है: ऐसे ही जिसको परमात्मतत्व की प्राप्ति, जीवनमुक्ति, सहज समाधि कहते हैं: उसका अंश है यह। इसको सन्तों ने 'मूक सत्संग' और 'अचिन्त्यका ध्यान' भी कहा है। ❑

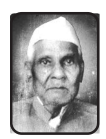

ध्यान माला

✍ श्री कुबेर प्रसाद 'गुप्त कबीर'

दोहा-29 : कर्म, उपासना ज्ञान है, जीने की विधि तीन।
निज स्तर पर हैं सभी, यज्ञ, दान, तप लीन॥

मनुष्य अपना जीवन कर्मकाण्ड की साधना या उपासना काण्ड की साधना अथवा ज्ञानकाण्ड की साधना से व्यतीत करता है। कर्मकाण्ड की साधना 'मैं' द्वारा और बुद्धि के अनुशासन में की जाती है।

> **उपासनाकाण्ड की साधना ध्यान के नियमित अभ्यास और उसके बाद स्वाभाविक क्रिया करने की रूझान के साथ की जाती है। लेकिन ज्ञानकाण्ड की साधना में 'मैं' कोई साधना नहीं करता।**

इसमें साधक की साधना का प्रेरक ब्रह्म की शक्ति होती है, जो उसे यह अनुभव करा देती है: कि ब्रह्म क्या है? और वह उसके जीवन को संवारने के लिये किस प्रकार सक्रिय हो गया है? जिससे उसके जीवन के सभी व्यापार स्वाभाविक रूप से बिना बुद्धि के अनुशासन के मंगलमय रीति से समपन्न हो रहे हैं। कुछ महात्मा गीता के अध्याय 18 श्लोक 3 के अंश

'यज्ञदानतप: कर्म न त्याज्यमिति चापरे'

को उधृत कर जोर देकर कहते हैं: कि यज्ञ, दान और तप त्यागने योग्य नहीं हैं, इन्हें अवश्य करना चाहिए।

> **परन्तु वे इसी अध्याय के श्लोक 6 के तात्पर्य को ध्यान में नहीं रखते। उसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सम्पूर्ण श्रेष्ट कर्म आसक्ति और फलाशा को त्याग के करना चाहिये। उन्हें ईमानदारी से इस बात को देखना चाहिये कि जब वे कहते हैं कि यज्ञ, दान और तप अवश्य करना चाहिये, तब उनके मन में उनसे होने वाले लाभ और न करने से होने वाली हानि की बात रहती है अथवा नहीं।**

शरीर और बुद्धि के स्तर से किये जाने वाले यज्ञ, दान और तप निश्चय ही निम्न स्तर के हैं तथा दु:ख नाश करने में असमर्थ हैं। इस बात को गीता के 11वें अध्याय के 53वें श्लोक में स्पष्ट किया गया है-

> **'हे अर्जुन ! न वेदों से, न तप से, न दान से और न यज्ञ से; मैं देखा जाने में शक्य हूं।**

स्वामी रामसुखदासी जी कहते है; कि कितनी ही महान क्रिया क्यों न हो कितनी ही योग्यता से सम्पन्न क्यों न की जाय: उसके द्वारा भगवान् खरीदे नहीं जा सकते। वे सब के सब मिलकर भी भगवद् प्राप्ति का मूल्य नहीं हो सकते।

अनेक वेदों का अध्ययन करने पर, बहुत बड़ी तपस्या करने पर, बहुत बड़ा दान देने पर तथा बहुत बड़े यज्ञ अनुष्ठान करने पर भी भगवान् मिल जायेंगे: ऐसी बात नहीं है।

हम देख चुके हैं: कि उपासना संबंधी कर्म ही हमारी चेतना का विकास करते हैं। चेतना के विकास में ही ज्ञान की उत्पत्ति होती है। इसलिये सत्य यही है: कि उपासना संबंधी कर्म ही हमें जीवन का ज्ञान देते हैं और ज्ञान के बिना बन्धनों से मुक्ति अर्थात् दु:खों से छुटकारा संभव नहीं है, यह सभी जानते हैं-

ऋतेज्ञाना: न मुक्ति

जहां पर भी यज्ञ, दान, तप को अनिवार्य कहा गया है: वहां गीता का तथा सिद्ध सन्तों का तात्पर्य आसक्ति और फल का त्याग कर के ही यज्ञ, दान, तप करने की बात कही गई है। यह आसक्ति और फल त्यागपूर्ण कर्म केवल उपासना और ज्ञानकाण्ड की साधनाओं में ही संभव हैं; और इन साधनाओं में ये तीनों स्वत: अर्थात् स्वभावत: होते हैं। गीता के अध्याय 8 के श्लोक 28 में इसे और भी स्पष्ट कहा गया है-'योगी पुरुष' (ध्यान की साधना का उच्च साधक)

वेदों के पढ़ने से, यज्ञ, तप तथा दानादिको के करने से जो पुण्यफल प्राप्त होता है: ध्यान की साधना से उन सभी का अतिक्रमण कर जाता है और सनातन परमपद को प्राप्त करता है। ईश्वर स्वयं सभी प्रकार के यज्ञों के भोक्ता हैं-

भोक्तारं यज्ञत पसाम्।

अत: समस्त यज्ञों का मुख्य प्रयोजन यज्ञपति को प्रसन्न करना है। इस से प्रकृतिक पदार्थों का अभाव नहीं रहता। मनुष्य जीवन शुद्ध हो जाता है। अत: स्मृति के सूक्ष्म तन्तु शुद्ध होते हैं और वह मुक्ति मार्ग का चिन्तन

कर सकता है। इस तरह भावातीत (Transcendental) चेतना तक पहुंचता है, जो आज के समाज के लिए सर्वाधिक आवश्यक है।

सब यज्ञ अन्तत: ईश्वर को ही अर्पित किए जाते हैं।

अंतत: इस का ध्यय उत्तरोत्तर दिव्य पद प्राप्त करना है।

चोरों का समाज कभी सुखी नहीं रह सकता, क्योंकि उनका कोई जीवन लक्ष्य नहीं होता। उन्हें तो केवल इन्द्रिय तृप्ति की चिन्ता रहती है। भावातीत सिद्धांतों (Transcendental Theory) को अंगीकार करने के लिए संसार का कोई भी व्यक्ति '**ध्यान-योग**' द्वारा इस यज्ञ को सम्पन्न कर सकता है। यहां '**यज्ञ**' का तात्पर्य '**ज्ञान यज्ञ**' से है। हर प्राणी का सूक्ष्मतम क्षेत्र: भावातीत क्षेत्र है और यही आत्मशक्ति का हवनकुण्ड है। द्रव्य यज्ञों में मन हाथ और पदार्थों की मदद लेता है, लेकिन

सूक्ष्म यज्ञ में मन स्वयं विचरण करके आत्मशक्ति के हवनकुण्ड में अपने बन्धनों को अर्पित करता है। आत्मशक्ति में भी एक स्वत: सिद्ध अग्नि होती है, इसलिए आत्मशक्ति के हवनकुण्ड में स्थूल यज्ञ की तरह अग्नि स्थापित करने के लिए किसी पदार्थ की मदद नहीं लेनी पड़ती।

हर प्राणी केवल तभी तक जीवित है, जब तक उसके शरीर में एक गर्मी है। हर जीवात्मा जब शरीर त्याग देती है, तब त्यागे हुए शरीर को हम कहते हैं कि शरीर ठण्डा हो गया है: इस बात का प्रमाण है कि आत्म-शक्ति में अग्नि है। जिस प्रकार से द्रव्य यज्ञ में जब मनुष्य मन्त्रों के उच्चारण के साथ अग्नि में हवन सामग्री अर्पित करता है, तब हवनकुण्ड में अग्नि की लपटें बढ़ने लगती हैं।

बिल्कुल इसी तरह जब सूक्ष्म यज्ञ में मन आत्मशक्ति के हवनकुण्ड में अपने पर पड़े हुए बन्धनों (संस्कारों) को अर्पित

करता है: तब आन्तरिक जगत में भी अग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है और यह अग्नि ही हमारे जीवन के अनन्त पहलुओं को सुखी करने में सक्षम है।

जीवन में इस सूक्ष्म यज्ञ की ज्यों-ज्यों कमी होने लगती है। समय बीतने के साथ प्राणी इन समस्याओं से सम्बन्धित चिन्ताओं से ग्रस्त होने लगता है। इस तरह से यह समझना कितना आसान है कि मात्र इस सूक्ष्म यज्ञ (Meditation) की कमी में ही जीवन का उत्थान रुक जाता है और पतन शुरु हो जाता है। आत्म-उत्थान के रास्ते को ही ज्ञान यज्ञ कहते हैं।

जो साधक ध्यान का नियमित अभ्यास कर रहे हैं, वे जानते हैं: कि उनके मन में पिरोई हुई आत्मशक्ति बढ़ रही है। यही जीवात्मा के उत्थान का अर्थ है। साधक ध्यान के अभ्यास के बाद, क्रियाओं के क्षेत्र में भी आते हैं। उनके विविध संकल्प, ध्यान के अभ्यास द्वारा संचित ईश्वरीय शक्ति को अपनी इच्छाओं के क्षेत्र में उतारने की एक वैज्ञानिक कला है। साधक अच्छी तरह जानते हैं: कि जब मन ध्यान के बाद क्रियाओं के क्षेत्र में आता है, तब वायु मण्डल की शुद्धि स्वत: होती है: की नहीं जाती। वायु मण्डल की यह शुद्धि साधक और साधक के सम्पर्क में आने वाली समस्त चेतनाओं के बीच में सामंजस्य बढ़ाती है: चाहे चेतना वायु, अग्नि, पृथ्वी, ग्रह, वनस्पति की हों: या निर्जीव वस्तुओं की हो, या किसी प्राणी की हो।

इस तरह से हम देखते हैं कि प्रार्थनायें: पूजा से जुड़ी हुई हैं। (Prayers are related to Worship). उपरोक्त जीवन ही आध्यात्मिक जीवन है। ❑

नोट :- 1. ध्यान पत्रिका का वार्षिक शुल्क 20/- (बीस) रुपये मनी आर्डर अथवा कैश : अपने Address एवं Contact No. सहित इस पते पर भेजें :-

–Sh. Rakesh Garg, Keshav Lace Emporium,
Shop No. 91, Lajpat Rai (Rehri) Market, Hisar-125001

2. प्रत्येक रविवार को बुधला सन्त मन्दिर नज़दीक बस स्टैण्ड, हिसार में पारिवारिक ध्यान सत्संग शाम को 4 बजे से 6 बजे तक होता है। आप सभी सपरिवार सादर आमन्त्रित हैं।

3. ध्यान (Meditation or Self Realization) सम्बन्धी अपने अनुभव, लेख, आलोचना (Comments), अनुभूतियां, प्रश्नोत्तर, शंका-समाधान इत्यादि इस पते पर भेज सकते हैं :-

–सुरेश कुमार गुप्ता
1618, अर्बन एस्टेट-II,
पुष्पा कम्पलैक्स के पीछे, हिसार-125005

PRINTED MATTER